National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2022; 1(40): 187-190
© 2022 NJHSR
www.sanskritarticle.com

प्रो. विनोद कुमार शर्मा
आचार्य, ज्योतिषविभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Correspondence:
प्रो. विनोद कुमार शर्मा
आचार्य, ज्योतिषविभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भौम-दोष विमर्श

प्रो. विनोद कुमार शर्मा

अमुक लड़के या लड़की का विवाह सम्बन्ध किया जा सकता है या नहीं, इसके निर्णय हेतु भारतीय ज्योतिषशास्त्र ने दो प्रकार के अनुशासन बतलाए है।

(१) अष्टकूट विचार।

(२) कुज (मङ्गल) दोष विचार।

उपरोक्त दोनों अनुशासनों द्वारा वर-कन्या के विवाह सम्बन्ध का ज्योतिष-शास्त्रीय औचित्य सिद्ध हो जाने पर भी उनका विवाह स्वेच्छानुसार जब कभी करने की स्वतन्त्रता ज्योतिष का मुहूर्त्त शास्त्र नहीं देता, बल्कि शुभ काल की निर्धारण की एक लम्बी प्रक्रिया बतलाता है, जिसे विवाह काल निर्णय कहते हैं। इस प्रकार हम निःसन्देह कहते हैं कि वैवाहिक जीवन को सुख-समृद्धिमय बनाने हेतु भारतीय ज्योतिषशास्त्र के तीन अनुशासन हैँ, जिनका पालन विवाह सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व करना नितान्त आवश्यक है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के तीन अनुशासन-

(१) अष्टकूट विचार।

(२) कुज (मङ्गली) दोष विचार।

(३) शुद्ध विवाह काल निर्णय।

प्रस्तुत लेख में मङ्गली (कुज) दोष का परिहार सहित विस्तृत विवेचन करना है, जो कि विवाह सम्बन्ध की शक्याशक्यता का निर्णय करने के दूसरे अनुशासन का प्रतिपाद्य विषय है। द्वितीय अनुशासन के अन्तर्गत दैवज्ञ- लोग विवाहसम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व अष्टकूटों के आधार पर प्रदत्त निर्णय को अन्तिम रूप देने के लिए लड़का-लड़की की जन्मकुण्डलियों (जन्मकालिक ग्रहस्थितियों) की तुलना करना परम आवश्यक मानते हैं। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है जो अनुशासन वर कन्या की ग्रहस्थितियों के मिलान के आधार पर विवाह सम्बन्ध की शक्याशक्यता का अन्तिम रूप से निर्णय करने में समर्थ है उसका वर्णन फलितज्योतिष के किसी भी प्राचीन मूलग्रन्थ (जातक, संहिता, मुहूर्त ग्रन्थों) में उद्धृत नहीं है, तथापि दैवज्ञ लोग इसे विवाहसम्बन्ध के लिए अनिवार्य मानने लगे हैं। अतः इस का विषय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं-

मङ्गली (कुज) दोष-

सर्वप्रथम दैवज्ञ को जातकशास्त्रोक्त भाग्योदय और सुख, सम्पत्तिकारक योगों के साथ वर-कन्या की आयु का विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि इतरेतर शुभाशुभयोगों का फल दम्पत्ति की दीर्घायु होने पर ही सम्भव है। यथा-

पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
आयुर्हीननराणां च लक्षणैः किं प्रयोजनम्।।[1]

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार किसी भी स्त्री की जन्म कुण्डली में उसके सौभाग्य का विचार सप्तम स्थान से, शरीर (स्वरूप) का विचार लग्न और चन्द्रमा से, वैधव्य दोष का विचार मृत्यु भाव से

तथा सन्तति (पुत्र) सुख का विचार पञ्चम भाव से करते हैं। यथोक्तम्-

सौभाग्यं सप्तमस्थाने शरीरं लग्नचन्द्रयोः।
वैधव्यं निधनस्थाने पुत्रे पुत्रम् विचिन्तयेत्।।[2]

यदि किसी वर-कन्या की जन्मकुण्डली के १, ४, ७, ८, १२वें भाव में मङ्गल बैठा हो तो माना जाता है कि उसका दाम्पत्य जीवन या तो संकटपूर्ण रहेगा या उसके जीवन साथी की अकाल मृत्यु हो जाएगी। यथोक्तम्-

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्याभर्तुविनाशाय भर्त्ता कन्याविनाशकः।।[3]

कुछ ज्योतिर्विदों के अनुसार **'लग्ने व्यये च पाताले'** वाक्य के स्थान पर **'धने व्यये च पाताले.....'** वाक्य प्रचलित है। इसी बात को जातकपारिजात में कहा गया है- वर की जन्म कुण्डली के २.४, ७.८, १२वें भाव में मङ्गल की स्थिति हो तो दारा वियोग कारक, ऐसी ही स्थिति यदि कन्या की जन्म कुण्डली में हो तो पति के लिए अनिष्ट देने वाली होती है। यथा-

धनावसानस्मरयानरन्ध्रगो धरासुतो जन्मनि यस्य दारहा।
तथैव कन्याजानजन्मलग्नतो यदि क्षमासूनुरनिष्टदः पतेः।।[4]

इससे यह स्पष्ट है कि द्वितीय भाव भी दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित है। इस बारे में फलदीपिका, जातकपारिजात, दैवज्ञाभरण आदि ग्रन्थों में पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। यथा-

भार्यानाशस्त्वशुभसहिती वीक्षितौ वार्थकामौ।[5]

द्यूनकुटुम्बगतौ यदि पापी दारावियोगजदुःखकरौ तौ।[6]

सप्तमेशे कुटुम्बेशे राहु-केतुसमन्विते।
शनैश्चरेण संदृष्टे कलत्रं नाशयन्ति ते।।[7]

धनगतदिननाथे पुत्रदारैर्विहीनः।[8]

इस मान्यता का आधार यही है कि द्वितीय भाव कुटुम्ब का है और दाम्पत्य जीवन कुटुम्ब से पूरी तरह अनुबद्ध है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि १, २, ४, ७, ८ और १२वाँ भाव किसी न किसी रूप से दाम्पत्यजीवन से सम्बन्धित हैं। जैसे-

१. लड़की या लड़के की जन्म कुण्डली में लग्न पति-पत्नी का परस्पर मारक स्थान होता है।

२. दूसरा कुटुम्ब स्थान है, पत्नी कुटुम्ब का प्रधान केन्द्रीय स्तम्भ है। यदि केन्द्रीय स्तम्भ टूट जाय तो शमियाना गिर जाता है। दूसरा स्थान पति या पत्नी की आयु का स्थान भी है।

३. चतुर्थ सुख स्थान है, घर का विचार भी चौथे स्थान से करते हैं। यदि गृहिणी (घरवाली) न रहे तो घर कैसा?

४. सप्तम स्थान प्रत्यक्ष रूप से पति या पत्नी का स्थान है।

५. अष्टम भाव -लिङ्ग मूल से गुदावधि तक होता है। अतः इस भाव का पति या पत्नी से सम्बन्ध स्पष्ट है। पति- पत्नी का परस्पर मारक स्थान होता है।

६. द्वादश भाव पति-पत्नी के लिए शयनसुख को बतलाता है।

अतः इन स्थानों में मङ्गल यहाँ (मङ्गल, शनि, राहु, केतु, सूर्य, क्षीणचन्द्र तथा सपाप बुध का उपलक्षण मात्र है) पापग्रहों की स्थिति तत्तद्भाव से सम्बन्धित सुख की हानि करती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए दैवज्ञों में निम्न श्लोक प्रचलित हैं-

यत्कुजस्य फलं प्रोक्तं लग्ने तुर्ये व्ययेऽष्टमे।
सप्तमे सैंहिकेयार्क- सौरिणां च तथा स्मृतम्।।[9]

तनौ चतुर्थे निधने व्यये वा मदालये पापयुतः कुजश्चेत्।
अनङ्गलीलां प्रकरोति जारैः पतिं तिरस्कृत्य विलोलनेत्रा।।[10]

वर-वधू का पारस्परिक स्नेह, प्रेमाकर्षणानुकूल्य मुख्य रूप से दोनों के स्वस्थ तन तथा मन पर निर्भर होता है। तन का विचार जन्म लग्न से तथा मन का विचार चन्द्र लग्न से होता है। अतः जन्मलग्न तथा चन्द्रलग्न से उपर्युक्त भावों में स्थित क्रूर ग्रहों का मिलान अवश्य करना चाहिए। यथा-

लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवाऽलोकिते।
चन्द्राद्वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथासम्भवः।।[11]

अनेक फलितग्रन्थों में उपर्युक्त स्थिति का लग्न, चन्द्र के साथ शुक्र से विचार करने का प्रावधान है। क्योंकि शुक्र सप्तम भाव का कारक तथा काम का अधिष्ठाता है। अतः कहा गया है-

लग्नेन्दुकारकैक्ये तु लग्नादेव विचिन्तयेत्।
लग्नात्तुर्यं चन्द्रलग्नात्त्रिपादं शुक्रादर्धपादमाहुर्मुनीन्द्राः।।

कुछ स्थलों पर सप्तमेश से भी उपर्युक्त स्थानों में पाप ग्रहों की स्थिति को एक-दूसरे के लिए हानिप्रद माना गया है। यथा-

लग्नाच्चन्द्राच्च शुक्राच्च सप्तमेशाद् यदाऽशुभाः।
लग्नाम्बुद्यूनरिष्फाष्टगताः स्त्रीहानिकारकाः।।
एवं लग्नाच्च चन्द्राच्च द्यूनपाच्च यदा खलाः।
उक्तस्थानगताश्चेत् स्युः पत्युर्हानिकरा मताः।।

इस प्रकार दैवज्ञों ने वर-कन्या की कुण्डलियों में लग्न, चन्द्र एवं शुक से १, ४, ७, ८, १२ भावें में क्रूर (पाप) ग्रहों की स्थिति को दाम्पत्यजीवन में विक्षोभ, विघटन, वैधुर्य एवं वैधव्य का कारण माना है। इससे सम्बन्धित अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं-

चन्द्रादिलग्नाच्च खलाः कलत्रे हन्युः कलत्रं च लयं गतौ तौ।
चन्द्रार्कपुत्रौ च कलत्रसंस्थौ पुनर्भवा स्त्री परिलब्धिदौस्तः।।[12]

चन्द्राच्चतुर्थगो भौमो जन्मकाले यदा भवेत्।
सुखभङ्गी दरिद्री स्यात्पुंसः स्त्री म्रियते ध्रुवम्।।[13]

" भौमाक्रयस्ते भृगुजशशिनोर्दारहीनोऽसुतो वा ।।"[14]

चन्द्रात्सप्तमगो भौमो जन्मकाले यदा भवेत्।
स्त्री कुशीला भवेत्तस्य सदा चाप्रियवादिनी।।[15]

क्रूर ग्रहों की लग्न, चन्द्र एवं शुक्र से १, ४, ७, ८, १२ भावों में स्थिति वाले इस कुयोग को दैवज्ञ लोग मङ्गली दोष, कुज दोष, मङ्गली योग भी कहते हैं। इस कुयोग में उत्पन्न वर या कन्या को मङ्गली या माङ्गलीक कहा जाता है।

मङ्गल दोष परिहार-

दैवज्ञ लोग इस बात पर पूरा बल देते हैं कि मङ्गली लड़की या लड़के का विवाह मङ्गली लड़के या लड़की से ही किया जाय अन्यथा अमङ्गली और मङ्गली लड़के-लड़की का विवाह कर देने पर अमङ्गली (जिसकी कुण्डली में मङ्गली दोष नहीं है) को यौवन में ही मृत्यु हो जायेगी। यदि दोनों की कुण्डली में मङ्गलीदोष समान है तो उनका दाम्पत्यजीवन सुख-समृद्धिमय होगा, दोनों की दीर्घायु होगी। अतः कहा गया है-

कुजदोषवती देया कुजदोषवते सदा ।
नास्ति दोषो न चानिष्टं दम्पत्योः सुखवर्धनम् ।।
शनिभमौऽथवा कश्चित् पापो वा तादृशो भवेत् ।
तेष्वेव भवनेष्वेव भौमदोषविनाशकृत् ।।[16]
भौमतुल्यो यदा भौमः पापो वा तादृशो भवेत्।
उद्वाहः शुभदः प्रोक्तश्चिरायुः पुत्रपौत्रदः ।।[17]
यामित्रे च यदा सौरिर्लग्ने वा हिबुके तथा ।
नवमे द्वादशे चैव भौमदोषो न विद्यते ।।[18]
एवं संख्ये कुजे संस्थे विवाहो न कदाचनः।
कार्यो वा गुणबाहुल्ये कुजे वा सदृशे तयोः।।[19]

इस के अतिरिक्त भी अनेक कुजदोष परिहार सम्बन्धी योग मिलते हैं जिनमें से कुछ तो शोध-परक हैं।

१. यदि मङ्गल स्वराशिस्थ एवं उच्चराशिस्थ, स्वनवमांश या उच्च नवमांश में स्थित हो तो मङ्गलदोष नहीं होता है।

स्वक्षेत्रे उच्चराशिस्थे उच्चांशे स्वांशगेऽपि वा।
अंगारके न दोषः स्यात् कर्क्यां सिंहे न दोषभाक्।।

२. केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह तथा ३, ६, ११ में पाप ग्रहों हो तथा सप्तमेश सप्तम में हों तो भौमदोष नहीं होता।

केन्द्रे कोणे शुभाढयश्चेत् त्रिषडायेऽप्यसद्ग्रहाः।
तदा भौमस्य दोषो न मदने मदनपस्तथा।।[20]

३. मेषस्थ भौम लग्न में, वृश्चिकस्थ चतुर्थ में, मकरस्थ सातवें में, कर्क राशिस्थ आठवें में एवं धनुराशिस्थ बारहवें भाव में हो तो मङ्गलदोष नहीं होता। यहाँ पर कुछ आचार्य सप्तम में वृष का तथा अष्टम में कुम्भ का मङ्गल बतलाते हैं।

४. जिस कन्या की जन्म या चन्द्र कुण्डली से सातवें भाव में सप्तमेश अथवा शुभग्रह हों तो वैधव्य दोष, अनपत्य विषकन्या दोष समाप्त हो जाते हैं।

५. राशीश मैत्री, गणैक्य तथा प्रचुर गुणों की उपलब्धता होने पर भी भौम दोष नहीं होता। दोनों की जन्मकुण्डली में मङ्गलदोष हो अथवा गुणप्राप्ति पर्याप्त हो तो भौमदोष नहीं होता।

६. बलवान्वित गुरु या शुक्र लग्न तथा सप्तम में हो तो भौम दोष नहीं होता।

७. वक्री, नीचस्थ, अस्तंगत अथवा शत्रुक्षेत्रस्थ मङ्गल उपरोक्त दुष्ट स्थानों में हो तो भौमदोष नहीं होता।

८. द्वितीय भाव में चन्द्र और शुक्र हों, गुरु दृष्ट मङ्गल हो, केन्द्रस्थ राहु हो या मङ्गल एवं राहु की युति हो तो भी मङ्गली दोष नहीं होता है।

अतः जो लोग ज्योतिष में विश्वास रखते हैं वे अपने पुत्र या पुत्री आदि का विवाह सम्बन्ध स्थापित करने से पहले भावी पुत्रवधू या दामाद आदि की कुण्डलियों का मिलान अपने पुत्र-पुत्री की कुण्डलियों से अवश्य करवाते हैं। अधिकतर ज्योतिषी वर-कन्या की कुण्डली का मिलान निम्न से प्रकार करते हैं- वर की कुण्डली में लग्न, चन्द्र एवं शुक्र से १, ४, ७, ८, १२वें भावों में जितने पापग्रह बैठे हों उतने ही क्रूर ग्रह कन्या की कुण्डली में इन भावों में बैठे हों तो मिलान उत्तम माना जाता है। यदि इस संख्या में थोड़ा ही अन्तर हो तो मिलान को सामान्य माना जाता है। यदि इस संख्या में अधिक अन्तर हो तो मिलान को दोषपूर्ण मानते हैं। इसके अतिरिक्त दैवज्ञ कुजदोषकारक (लग्न, चन्द्र, शुक्र से १, ४, ७, ८, १२ भावों में स्थित) क्रूर ग्रहों की उच्चादि स्थिति आदि का भी विचार करते हैं। यदि कुजदोषकारक ग्रह उच्च, उच्च-मूलत्रिकोण राशि,स्वराशि या मित्रराशि में हों तथा केन्द्र-त्रिकोण में क्रूर ग्रह बैठे हों तो कुज दोष को अधिक अशुभ मानते हैं। कुछ दैवज्ञ वर-कन्या दोनों के सप्तम भाव, सप्तमेश व शुक्र पर क्रूर एवं शुभग्रहों की दृष्टि, युति आदि कुयोग, सुयोगों का विचार कर दोनों की कुज दोषों की प्रबलता या निर्बलता का निर्णय करके मिलान की ग्राह्यता या अग्राह्यता का निर्धारण करते हैं।

मिलान का सिद्धान्त-

वर-कन्या दोनों के सप्तमभाव सम्बन्धी ग्रहयोग समान होने चाहिए। यदि वर की कुण्डली में सप्तमभाव सम्बन्धी ग्रह स्थिति शुभ है तो उसका सम्बन्ध ऐसी ही ग्रहस्थिति (सप्तमभावसम्बन्धी शुभफल वाली) लड़की से किया जाना चाहिए । यदि वर की कुण्डली में सप्तम भाव दूषित है तो उसकी विवाह भी ऐसी कन्या से ही किया जाए जिसका सप्तमभाव दूषित है। यदि उन दोनों की

सप्तमभावसम्बन्धी ग्रह योगों की शुभता या अशुभता की मात्रा में अधिक अन्तर हो तो वैवाहिक जीवन संकटपूर्ण होगा। वर-कन्या की सप्तमभावसम्बन्धी शुभ फलों की मात्रा ही उनकी कुजदोष की मात्रा है। दोनों की कुजदोष में जितनी समानता होगी उतना ही दाम्पत्यजीवन सुख-समृद्धिमय होगा। इसी प्रकार इनमें जितनी अधिक विषमता होगी उनका वैवाहिक जीवन उतना ही संकटाकीर्ण होगा।

ग्रहस्थिति- फलमात्रा - साधनप्रकार –

सभी फलिताचार्यों का मत है कि ग्रह की युति, दृष्टि आदि से उत्पन्न सुफल/कुफल की मात्रा उसकी उच्च- नीच राशि, मूल त्रिकोण राशि मित्र-शत्रु राशि, शुभ-पाप ग्रह राशि, स्वराशि या भावाधिपत्य के अनुसार न्यूनाधिक्य होती है। ग्रह की अस्तोदयस्थिति से भी यह मात्रा प्रभावित होती है। इस बारे में वराहमिहिर का वाक्य है-

उच्च-त्रिकोण स्व-सुहच्छत्रु-नीचगृहाऽर्कगैः।
शुभं सम्पूर्ण-पादोन-दल- पादाल्पनिष्फलम्।।[21]

इसका अर्थ है- उच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि, मित्रराशि, शत्रुराशि तथा नीच एवं अस्तंगत ग्रह की दृष्टि-युति आदि का शुभफल क्रमशः सम्पूर्ण (100 प्रतिशत) ७५ प्रतिशत, ५० प्रतिशत, २५ प्रतिशत, थोड़ा बहुत (२५ प्रतिशत से काफी कम) एवं शून्य होता है। भट्टोत्पल ने इसकी व्याख्या में स्पष्ट किया है कि उच्चादि में स्थित ग्रह की युति, दृष्टि आदि के कुफल की मात्रा उपरोक्त वाराहवाक्य के प्रतिकूल होती है। यही निर्णय मन्त्रेश्वर, पाराशर आदि ने दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि लड़के या लड़की के जन्माङ्गों में मङ्गल आदि क्रूर ग्रहों की स्थिति लग्न, चन्द्र तथा शुक्र से १, २, ४, ७, ८ या १२वें भाव में हो तो वे मङ्गल दोष युक्त होते हैं। फलतः उन्हें मङ्गली या माङ्गलीक कहा जाता है। अतः सुख-समृद्धिमय दाम्पत्य जीवन हेतु विवाह सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व वर-वधू दोनों की जन्मकुण्डलियों के आधार पर पापग्रहों का मिलान आवश्यक है क्योंकि भारतीय ज्योतिषशास्त्र मङ्गली लड़की या लड़के का मङ्गली लड़के या लड़की से ही विवाहसम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति प्रदान करता है। ऐसा करने पर दम्पत्ति दीर्घायु, पुत्र, मित्र, प्रचुर धन से युक्त होते हैं। यदि दोनों ही पत्रिकाओं में मङ्गल अथवा पापग्रहों की स्थिति में विषमता हो तो मङ्गली वर या वधू अमङ्गली वधू या वर की आयु के लिये अरिष्टकर होता है। यह सब निम्न श्लोक से स्पष्ट है-

दम्पत्त्योरैक्यकाले व्ययधनहिबुके सप्तमे लग्नरन्ध्रे
लग्नाच्चन्द्राच्च शुक्राद्यदि खलु निवसेत् भूमिपुत्रोद्वयोश्च।
तत्साम्ये पुत्रमित्रप्रचुरधनयुति दम्पती दीर्घकालम्
तस्मिन्नेवात्र हीने भवति हि मरणमाहुराचार्यमुख्याः।।[22]

ज्योतिष शास्त्र अनुसार यदि किसी वधू की कुण्डली में मङ्गल दोष या वैधव्य योग हो और वर की कुण्डली में दीर्घायु योग भी बनता हो तो दाराह योग के अभाव में भी वधू के माता, पिता, भाई, या अभिभावकों को उस होने वाली वधू से सावित्री अथवा पीपल व्रत करवा कर उसका किसी अच्छे शुद्ध वैवाहिक मुहूर्त्त में एकान्त स्थान में विष्णु भगवान की स्वर्ण प्रतिमा या पीपल या घड़े के साथ अथवा तीनों से एक साथ ही (पीपल वृक्ष के नीचे कुम्भ पर प्रतिमा स्थापित करके) विवाह करके फिर दीर्घायु वर के साथ विवाह करना चाहिए। ऐसा करने पर पुनर्भू (वैधव्य) दोष नहीं लगता हैं। यथोक्तम् —

जन्मोत्थं च विलोक्य बाल विधवा योगं विधाय व्रतम्
सावित्र्या उत पैप्पलं हि सुतया दद्यादिमां वा रहः ।
सल्लग्नेऽच्युत मूर्तिपिप्पलघटैः कृत्वा विवाह स्फुटं
दद्यातां चिरजीविनेऽत्र न भवेद्दोषो पुनर्भूभवः ।।[23]

अन्त में यही भाव है कि-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।

पाद टिप्पणी -

[1] मानसागरी अ.4 आयुर्भावविचार श्लो.1
[2] भावकुतूहलम् अ. 9 श्लो.3
[3] मुहूर्तसंग्रहदर्पण अ.8 श्लो.19
[4] जातकपारिजात अ.14 श्लो. 34
[5] फलदीपिका अ.10 श्लो.7
[6] जातकपारिजात अ.14 श्लो. 36
[7] दैवज्ञाभरणम्
[8] मानसागरी अ.2 रविफलविचार श्लो.1
[9] फलितमार्तण्ड अ.21 श्लो 33
[10] भावकुतूहलम् अ. 9 श्लो.26
[11] बृहज्जातकम् अ. 23 श्लो.1
[12] मानसागरी अ.4 जायाभावफलविचार श्लो.11
[13] मानसागरी अ.1भौमाध्याय श्लो.4
[14] फलदीपिका अ.10 कलत्रभाव श्लो.5
[15] मानसागरी अ.1भौमाध्याय श्लो.7
[16] फलितनवरत्नसंग्रह
[17] फलितमार्तण्ड अ.21 श्लो.34
[18] मुहूर्तसंग्रहदर्पण प्र. 8 श्लो. 21
[19] बृहज्ज्योतिषसार पृ.158 वि.प्र. श्लो.51
[20] बृहदैवज्ञरञ्जनम् प्र.71 श्लो.217
[21] बृहज्जातकम् अ.20 श्लो. 11
[22] बृहज्ज्योतिषसार वि.प्र पृ.156 श्लो.50
[23] बृहज्ज्योतिषसार वि.प्र पृ.158 श्लो.52

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2021; 1(39): 195-198
© 2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

प्रो. विनोदकुमारशर्मा
आचार्यः, ज्योतिषविभागः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृत-विश्वविद्यालयः, नवदेहली

Correspondence:
प्रो. विनोदकुमारशर्मा
आचार्यः, ज्योतिषविभागः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृत-विश्वविद्यालयः, नवदेहली

ग्रहणविवेचनम्

प्रो. विनोदकुमारशर्मा

लोकव्यवहारे सर्वैरपि ज्ञायते एव यद् ग्रहणं द्विविधम् - (क) चन्द्रग्रहणम् (ख) सूर्यग्रहणम् परं ग्रहणं केवलं चन्द्रसूर्ययोरेव न, अपितु सर्वेषामपि ग्रहाणां ग्रहणं भवति। न एतावता एव पृथिव्या अपि ग्रहणं भवति। एवमेव अन्यानि ग्रहणान्यपि जायन्ते, परन्तु अस्माभिरवलोकितानि न भवन्ति। अतस्तेषां परिज्ञानं सामान्यजनस्य कृते न भवति । यदि कश्चन सूर्यपृष्ठस्थो भवेत् तदा सोऽवश्यमेव भूग्रहणद्रष्टा स्यात् ।

अथ तेषां निदर्शनम् -

यदाऽस्माकं चन्द्रग्रहणं भवति तदा चन्द्रपृष्ठीयानां रविग्रहणम्। रविपृष्ठीयानाञ्च चन्द्रग्रहणं भवतीति स्पष्टम्। भूपृष्ठीयानां रविग्रहणकाले सूर्यपृष्ठीयानां कृते भूग्रहणम्भवति।

परन्तु यानि ग्रहणानि कथितानि तानि सर्वाण्यपि भूपृष्ठस्थजनानां कृतेनावलोकनयोग्यानि । अतस्ते द्वे एव ग्रहणे व्याख्यायेते ययोः प्रत्यक्षं भृपृष्ठस्थजनसमुदायेन क्रियते, कर्तुं वा शक्यते। अतः प्रत्यक्षं दृश्यमानत्वात् ग्रहणद्वयं प्रामुख्यं भजेते।

अस्माकं पुरतः ग्रहणविमर्शप्रसङ्गे केचन प्रश्नाः समुत्पद्यन्ते-

१. किं नाम ग्रहणम् ? २. ग्रहणं कदा भवति ? ३. ग्रहणस्य किं कारणम् ? ४. ग्रहणस्य कति भेदाः ?

तत्र सर्वप्रथमं ग्रहणम् -

गृह्यतेऽनेनेति ग्रहणम्। ग्राहको यदा ग्राह्यं वस्तुं गृह्णाति तदा ग्रहणं जायते। अत अनेनावगतं भवति यद् ग्रहणे ग्राह्यग्राहकयोः योगोऽवश्यमेव भवति। ग्राह्यग्राहकयोः योगाभावे न ग्रहणसम्भवः। अयश्च योगो द्वयोर्मध्ये विद्यमानस्यान्तरस्याभावात्, अन्तराभावस्तु जायत एव, तेन च ग्रहणनिष्पत्तिः।

अत्र ग्राहको नाम छादकः ग्राह्यं च छाद्यं भवति। यदा छादकः छाद्यं छादयति(आच्छादयति), तदा सम्पद्यमानायाः क्रियायाः कार्यस्य वा अभिधानं विद्वद्भिः ग्रहणमुच्यते। अर्थात् खगोलीयपिण्डस्य दृश्यत्वे द्वितीयखगोलीयपिण्डकृतव्यवधानं ज्योतिर्विद्भिः ग्रहणमुच्यते।

ग्रहणं कदा भवति -

चन्द्रग्रहणे आच्छादिका सूर्यग्रहान्निस्सृतकिरणैः भूमेरुपरि पतनादुत्पन्ना समुद्भूता वा भूच्छाया भवति। चन्द्रमा यदि तस्यां छायायां प्रविशति स्पर्शं वा करोति तदैव चन्द्रग्रहणस्य प्रारम्भो जायते, यावच्चन्द्रः तस्यां छायायां भवति तावच्चन्द्रग्रहणं भवति। यावान् कालः चन्द्रेण तस्यां तमोमय्यां सूच्यां (स्पर्शतो मोक्षं यावत्) व्यतीयते तावत्परिमितः कालः ग्रहणकालनाम्ना उच्यते।

भूमिरपि क्रान्तिवृत्ते च सा सूर्यं परितो भ्रमति। अत एव तमोमयी सूच्याकारा भुवश्छाया सूर्यविपरीतदिशायां सूर्यबिम्बात् षड्भान्तरे सदैव पतति। सूर्यबिम्बात् न षड्राश्यन्तर, एतस्मात् किञ्चित् न्यूनाधिक्ये वा चन्द्रमसः पातस्य स्थितिर्भवति। अत एव चन्द्रग्रहणे चन्द्रस्यापि सूर्यबिम्बकेन्द्रात् षड्भान्तरे स्थितिरावश्यकी । सूर्यचन्द्रयोरीदृशी षड्भान्तरात्मिका स्थितिः पूर्णिमान्त एव भवति।

अतः पौर्णमास्यामेव चन्द्रग्रहणं भवति। सूर्यग्रहणे चन्द्रमसः पातस्य स्थितिः सूर्यस्य राशि-अंश-कलादि समाना, किञ्चित् न्यूनाधिकं वा भवति। अतः चन्द्रमसोऽपि राश्यंशकलाविकलाः सूर्येण समा भवन्ति। एतादृशी च स्थितिः अमायामेव भवति। अतः सूर्यग्रहणममायां भवति। यथोक्तं सूर्यसिद्धान्ते-(दर्शः सूर्येन्दुसंगमः)

भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा ।
शशाङ्कपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ।।
तुल्यौ राश्यादिभिः स्यातामामावास्यान्तकालिकौ ।
सूर्येन्दूपौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिभिः समौ ।।1

अन्यदपि उक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ-

समगृहांशकला विकलौ स्फुटौ रविविधू विदधीत रविग्रहम्।
समलवावयवौ तु विधुग्रहं समवगन्तुमगुं च तदोक्तवत्।।[2]

ग्रहणस्य कारणम् -

चन्द्रग्रहणे आच्छादिका भूभा, छाद्यश्च चन्द्रमा भवति। अस्मिन् ग्रहणे सूर्यभूमिचन्द्राः सरलरेखायां स्व-स्वकक्षायां वा अधोऽधस्थाः भवन्ति। भूमिर्यदा सूर्यचन्द्रयोर्मध्यवर्तिनी तदा सूर्यबिम्बात् चन्द्रपतीनां किरणानां मार्गे बाधिका भवति। एतस्मात् कारणात् तमोमयी एका सूची जायते। चन्द्रः यदा भूच्छायामग्नो जायते तदा चन्द्रग्रहणम्। सूर्यग्रहणे आच्छादकः चन्द्रः आच्छाद्यश्च भास्करो भवति। ग्रहणेऽस्मिन् सूर्यचन्द्रभूमयः स्व-स्वकक्षायामधोऽधस्थाः भवन्ति। चन्द्रो भूरव्योर्मध्ये भवति। परिणामतः भूपृष्ठस्थाः जनाः सूर्यं न द्रष्टुं पारयन्ति। यतोहि यथा मेघाः सूर्यमावृतं कुर्वन्ति तथैव चन्द्रः सूर्यं प्रच्छन्नं करोति। यथोक्तम्-

छादको भास्करस्येन्दुरधः स्थो घनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ।।[3]

भावोऽयं विद्यते यदेकमेव तथ्यमवगन्तुं, प्रकारान्तरेण अन्यैः प्रकारैर्वा तथ्यविषयकपक्षकथनम्। तद्यथा-

सर्वे ग्रहाः स्व-स्व विमण्डलात्मकवृत्ते कक्षावृत्ते वा भ्रमन्ति। चन्द्रो यस्मिन् वृत्ते भ्रमति तद्वृत्तं विमण्डलवृत्तमुच्यते। सूर्यस्य भ्रमणमार्गः क्रान्तिवृत्तं कथ्यते। अत्र चन्द्रपरिक्रमणमार्गस्य क्रान्तिवृत्तात् प्रवणता एव हेतुर्भूभा सर्वदा क्रान्तिवृत्ते भ्रमति। परन्तु चन्द्रो यस्मिन् वृत्ते भ्रमति तस्य क्रान्तिवृत्तात् कोणीयान्तरं पंचांशाः/नवकलाः परिमितं भवति। चन्द्रकक्षायां चन्द्रो मासार्धं क्रान्तिवृत्तादुत्तरेण मासार्धं क्रान्तिवृत्ताद् दक्षिणेन भ्रमति एवं द्विवारं च प्रतिमासं क्रान्तिवृत्तमतिक्रामति। यत्रेदं चन्द्रकक्षावृत्तं क्रान्तिवृत्तमुल्लंघयति तत्रस्थौ द्वौ बिन्दू राहुकेतू कथ्येते। चन्द्र उत्तरं गच्छन् यत्र क्रान्तिवृत्तमुल्लंघयति तद् स्थानं विपात राहुः कथ्यते। यत्र च दक्षिणं गच्छनुल्लंघयति तद् स्थानं केतुः द्वितीय विपातः कथ्यते। अर्थाच्चन्द्रकक्षाक्रान्तिवृत्तयोः सम्पातौ राहुकेतू भवतः। चन्द्रग्रहणावसरे चन्द्रो भूच्छायायां प्रविशति, भूच्छाया च क्रान्तिवृते वर्तमाना भवति। अत एव चन्द्रमसोऽपि क्रान्तिवृत्ते स्थितिः राहुकेत्वोर्भवति। अनेन प्रकारेण चन्द्रग्रहणं तदा एव भवति यदा-

१. पूर्णिमा वर्तेत ।

२. चन्द्रश्च राहुकेत्वोः, समीपे वा भवेत् ।

एवं प्रकारेण सूर्यग्रहणं तदैव सम्भवति यदा-

१. अमावस्या तिथिर्वर्तेत ।

२. चन्द्रो राहुकेत्वोः, समीपे वा भवेत् ।

अस्माभिः पूर्वमेवोक्तं यद् ग्रहणकाले ग्राह्याग्राहकयोर्योगः परमावश्यको भवति। स च योगो ग्राह्याग्राहकयोरन्तराभावेनैव जायते। अयं चान्तराभावः त्रिविधो भवति।

१.पूर्वापरान्तराभावः, २.याम्योत्तरान्तराभावः, ३. ऊर्ध्वाधरान्तराभावः

भूकेन्द्रिक-परिणामने ग्रहाणां कक्षा ऊर्ध्वोऽधोरूपेण समानान्तराः वर्तन्ते तेन ग्राह्यग्राहकयो ऊर्ध्वाऽधोऽन्तरस्याभावः कदापि न सम्भवः। केवलं यदि पूर्वापरान्तराभावो भवेत् तदापि ग्रहणं प्रतिपर्वं न सम्भाव्यते। पूर्वापरान्तराभावेन सह याम्योत्तरान्तराभावः शराभावोऽपि अर्थात् ग्रहणं तदैव भवति यदा विक्षेपः शरो वा मानैक्यार्धादल्पो भवेत्। यदा विक्षेपः मानैक्यार्धादधिको भवति तदा ग्रहणं न सम्भवति। चन्द्रग्रहणार्थं मध्यमानैक्यार्धेन ५६' कलापरिमितेन भवितव्यम्। भुजांशो यदा १२˚

परिमितः स्यात्तदा शरमानं ५६ कलापरिमितं भवति।

सूर्यग्रहणस्पर्शार्थं मानैक्यार्धेन ३२ कलापरिमितेन भवितव्यम्। सिद्धान्तशिरोमणौ-

सपातसूर्योऽस्य भुजांशका यदा ।
मनू १४ नकाः स्याद्ग्रहणस्य सम्भवः।।[4]

'भुजांशकाः यदि नगोनाः स्युस्तदाऽर्कग्रहः।

ग्रहणस्यावस्थाः-

ग्रहणस्य सामान्येन पञ्चधाः अवस्था भवन्ति।

१. स्पर्शावस्था २. सम्मीलनावस्था ३. मध्यमावस्था

४. उन्मीलनावस्था ५. मोक्षश्च

ग्रहणस्य भेदाः-

१. चन्द्रग्रहणस्य प्रमुखाः भेदाः -

क.) पूर्णचन्द्रग्रहणम् ख.) खण्डचन्द्रग्रहणम्

क. पूर्णचन्द्रग्रहणम् - यदा चन्द्रः स्वकक्षायां भ्राम्यमाणः भूभासूच्यां प्रविशति तथा चन्द्रस्य पूर्णमण्डलं तमोमय्यां सूच्यां प्रविशति, तदेव चन्द्रग्रहणं भवति।

ख. खण्डचन्द्रग्रहणम् - यदा सः केवलमांशिकरूपेण प्रविशति अर्थात्(अर्धः भागः प्रकाशवान् भवति अर्धश्च तमोमयः) तदा खण्डग्रहणं भवति।

२. सूर्यग्रहणस्य प्रमुखाः भेदाः -

क.) पूर्णग्रहणम् ख.) वलयाकारग्रहणम् ग.) खण्डग्रहणम्

क. पूर्णग्रहणम्- ग्रहणेऽस्मिन् सूर्यस्य बिम्बः पूर्णतया चन्द्रबिम्बेनाच्छाद्यते।

ख. वलयाकारग्रहणम्- ग्रहणेऽस्मिन् विपुलसूर्यबिम्बमध्ये श्यामवृत्ताकारचन्द्रबिम्बो दृश्यते। तमभितः - उज्ज्वलसूर्यबिम्बो दृश्यते।

ग. खण्डग्रहणम् - यदा चन्द्रबिम्बः सूर्यस्य भागं स्पृष्ट्वा निर्गच्छति तदा खण्डग्रहणं भवति। सर्वेषामपि पूर्णग्रहणानां वलयाकारग्रहणानाञ्च प्रारम्भोऽन्ताश्च खण्डरूपेणैव जायन्ते।

ग्रासपरिमाणः-

पर्वान्तकालिकचन्द्रमसः विक्षेपस्य छाद्य-छाद्यकयोः मानैक्यार्धात् (व्यासार्धयोगात्) शोधितः तावदेव ग्रामस्य परिमाणो भवति। यथोक्तं सूर्यसिद्धान्ते-

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः।

योगार्धात् प्रोज्झ्य यच्छेषं तावच्छन्नं तदुच्यते।।[5]

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्यखण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम्।[6]

सर्वग्रासखण्डग्रहणज्ञानम् -

१. सर्वग्रासग्रहणम्- यदि छाद्यस्य बिम्बमानात् ग्रासस्य परिमाणोऽधिको भवेत्तदा सम्पूर्णग्रहणमथवा सर्वग्रासग्रहणं भवति।

२. खण्डग्रहणम् - यदा छाद्यस्य बिम्बमानात् ग्रासस्य परिमाणः न्यूनः भवेत् तदा खण्डग्रहणं भवति। यथोक्तम्-

'ग्राह्यमानाधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा ।'[7]

ग्रहणस्य दिक्ज्ञानम् -

चन्द्रग्रहणे भूच्छाया व्यासार्धस्य सर्वदा चन्द्रबिम्बीयादधिकत्वात्। रवेः यावती गतिः तावत्येव भूच्छायायाः रविच्छायायाश्च षड्भान्तरत्वाच्चन्द्रस्य गतिः रवेर्गतेरधिका। ततः चन्द्रो भूच्छायायां पृष्ठतः प्रविशति। तस्मात् चन्द्रग्रहणे बिम्बस्य प्राच्यां स्पर्शो भवति पश्चिमायाश्च मोक्षः। रविग्रहणे चन्द्रो रविं पृष्ठत आच्छादयन् प्रथमं रविबिम्बीय पश्चिमभागं ग्रसति ततः पश्चिमायां दिशि ग्रहणारम्भः स्पर्शो वा भवति, पूर्वस्यां च दिशायां मोक्षो भवति।

ग्रहस्य वर्णाः-

चन्द्रबिम्बस्य अर्धादल्पो भागो यदा ग्रसितो भवति तदा तद्वर्णो धूम्रः सञ्जायते। अर्धबिम्बे ग्रसिते कृष्णवर्णो जायते। अर्धाधिके स ग्रसिते कृष्णरक्तमिश्रितो वर्णो भवति। सम्पूर्णे ग्रहणे तद्वर्णो पिशङ्गः। सूर्यग्रहणे कृष्णवर्णो भवति। यथोक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ-

स्वल्पे छन्ने धूम्रवर्णः सुधांशोरर्धे, कृष्णः कृष्णरक्तोऽधिकेऽर्धात्।

सर्वच्छन्ने वर्ण उक्तः पिशङ्गो भानोश्छन्ने, सर्वदा कृष्ण एव।।[8]

ग्रहणस्यादेशः-

इन्दोर्भागः षोडशः खण्डितोऽपि,

तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः।

तेजस्तैक्ष्ण्यात्तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो,

नादेश्योऽतोऽल्पो ग्रहो बुद्धिमद्भिः।।[9]

द्वयोः ग्रहणयोः संख्याविचारः -

चन्द्रग्रहणं भुवोऽप्रकाशितगोलार्धस्य प्रत्येकभागाद् दृश्यते, परन्तु रविग्रहणं भुवोऽप्रकाशितगोलार्धस्य तस्मादेव भागाद् दृश्यमानं भवति य उपच्छायायां प्रच्छायायां वा पतति। ईदृशो भागः पर्याप्तं संकुचितः, अत एव चन्द्रग्रहणानि सूर्यग्रहणापेक्षयाऽधिकसंख्यायां दृश्यन्ते, यद्यपि तान्यल्पसंख्यायां भवन्ति ।

एकस्मिन् वर्षे ग्रहणानां संख्या -

रविग्रहणे सम्भावितविक्षेपः चन्द्रग्रहणीय-विक्षेपादधिको भवति। अतः चन्द्रग्रहणापेक्षया वर्षे सूर्यग्रहणान्यधिकानि भवन्ति। परन्त्वेकस्मिन्नेव दृश्ययोग्यभागेषु चन्द्रग्रहणानि सर्वेषामपि भूपृष्ठीयानां दर्शनयोग्यानि। तत्र रविग्रहणानि क्वचिदेव दृश्यन्ते न सर्वदेशेषु। ग्रहणानामधिकतमा संख्यात्वेकादश तत्र सप्त सम्यक् दृश्यन्ते। पञ्चसूर्यग्रहणानि द्वे च चन्द्रग्रहणे। अथवा चत्वारि सूर्यग्रहणानि चन्द्रग्रहणानि च त्रीणि मुख्यत्वेन। एकस्मिन् वर्षे द्वे सूर्यग्रहणे अवश्यं भवतः। एकस्मिन् ग्रहणावृत्तिचक्रे ४१ (एकचत्वारिंशत्) सूर्यग्रहणानि भवन्ति। २९ (एकोनत्रिंशत्) च चन्द्रग्रहणानि। प्रायशः प्रत्येकस्मिन् षष्ठे मासे ग्रहणानुकूलकालो भवति ।

ग्रहणकालः -

चन्द्रग्रहणे भूच्छायायाः व्यासस्य वास्तविकं मानं सप्तशतोत्तरपञ्चसहस्रं (५७००) क्रोशावर्धानि भवति। अतः चन्द्रमा भूच्छायायां प्रायेण होरात्रयेणोल्लङ्घयति। सूर्यग्रहणे च चन्द्रमसः छायायाः भूमौ वास्तविको व्यासः सप्तषष्ट्युत्तरैकशतं(१६७) क्रोशार्धपरिमितः वर्तते। अत एव प्रच्छाया अष्टपलकेभ्यः पूर्वमेव पृथिवीतलमुल्लङ्घयति। एवं पूर्णचन्द्रग्रहणस्य स्थितिकालोऽधिको भवति। पूर्णसूर्यग्रहणस्य स्थितिकालः अल्पीयान् वर्तते।

स्थित्यर्धविमर्दार्धकालः- सर्वग्रासग्रहणं यावत्तिष्ठति तदर्धकालः स्थित्यार्धकालनाम्ना उच्यते गणितज्ञैः। स्पर्शकालात् ग्रहणमध्यकालं स्थित्यर्थं, सम्मीलनकालात् मध्यमकालं यावत् समयः विमर्दखण्डमिति जानन्ति विद्वांसः। स्थित्यर्धस्य द्विगुणितः कालः सम्पूर्णग्रहणकालो भवति। अनेन प्रकारेण विमर्दार्धस्य द्विगुणितः सर्वग्रासग्रहणस्य सम्मीलननादुन्मीलनं यावत् सम्पूर्णकालो भवति।

ग्रहणप्रभावविचारः-

यस्य जन्मराशौ नक्षत्रे वा ग्रहणं भवति तस्य उद्वेग-प्रवास-भय-मरण-उपद्रव-घोररोग-हानि-धनक्षय-मित्रनाश-मनःसन्ताप-शत्रुता-तिरस्कार-अपमान-प्राणानां च सन्देहः अथवा मृत्योर्भयं भवति। यथोक्तं -

यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ।
तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षयः।।[10]
यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरूपयुज्यते।
राज्यनाशं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत्।।[11]

ज्योतिषशास्त्रे मरणमष्टविधं स्मृतम् -

यथा दुःखं भयं लज्जा रोगः शोकस्तथैव च।
मरणं चापमानं च मृत्युरष्टविधः स्मृतः।।[12]

द्वादशराशिषु ग्रहणस्य फलम् -

यस्य जन्मराशौ ग्रहणं भवेत्तदा तस्य शरीरपीडा घातश्च, द्वितीये राशौ क्षतिः, हानिः, धननाशश्च। तृतीये- धनलाभः, चतुर्थे शरीरपीडा-ध्वंसः, पञ्चमे - पुत्रचिन्ता, षष्ठे- सुखं, सप्तमे- पत्निमरणं वियोगश्च। अष्टमे -घोररोगः मरणं च, नवमे- सम्मनविनाशः, दशमे- सिद्धिः सुखश्च, एकादशे- लाभः, द्वादशे राशौ ग्रहणे च मृत्युः द्रव्यनाशो वा भवति। यथोक्तम् –

जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा,
चिन्तासौख्यकलत्रदौस्थ्यमृत्तयः स्युर्माननाशः सुखम्।
लाभोपाय इति क्रमात् तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्ण-
गोदानं शान्तिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे।।[13]

सूर्यग्रहणानन्तरं चन्द्रग्रहणफलम् -

सूर्यग्रहणानन्तरं पूर्णिमायां चन्द्रग्रहणं स्यात्तदा ब्राह्मणास्त्वनेक-यज्ञफलभोक्तारः प्रजाश्च प्रसन्नमनस्काः तिष्ठन्ति । यथोक्तम् –

अर्कग्रहात् तु शशिनो ग्रहणं दृश्यते ततो विप्राः।
नैकक्रतुफलमतो भवन्ति मुदिता प्रजाश्चैव।।[14]

चन्द्रग्रहणानन्तरं सूर्यग्रहणस्य फलम् -

यदि चन्द्रग्रहणानन्तरमामावस्यायां सूर्यग्रहणं भवेत्तदा प्रजास्वनयः स्त्रीपुरुषेषु च परस्परं द्वेषोत्पत्तिर्भवति। उक्तं यथा –

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद्ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रानयोः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम्।।[15]

उक्तप्रकारेण ग्रहणविषयकं विविधं विवेचनं प्रस्तुतम्। तत्र ग्रहण-काल-स्थिति-फलादिकं बहुविधशास्त्रप्रणाणतर्कादिभिस्साधितम्।

इत्यलमिति विस्तरेण।

पादटिप्पण्यः

[1] सू.सि.च.ग्र.अ.श्लो. ६-७
[2] सि.शि.चं.ग्र.श्लो. २
[3] सू.सि.चं.ग्र.अ.श्लो.९
[4] सि.शि.प.सं.अ.श्लो. ३
[5] सू.सि.चं.ग्र.अ. श्लो. १०
[6] सि.शि.चं.ग्र.अ.श्लो. ११
[7] सू.सि.च.ग्र.श्लो. ११
[8] सि.शि.चं.ग्र.अ.श्लो.३६
[9] सि.शि.चं.ग्र.अ.श्लो. ३७
[10] वशिष्ठ सि.अ.३९ श्लो. १
[11] मु.चि.प्र.४श्लो.सं ६ (पी.टी.)
[12] पंचस्वरा ३/१२
[13] मु.चि.प्र.४श्लो.सं ६
[14] बृ.दै.रं.प्र.३३श्लो.सं १३७
[15] बृ.दै.रं.प्र.३३श्लो.सं १३६